सीखने पर हक़ तो सबका बराबर है

विष्णु गोपाल

कोई खेल, कोई काम, कोई प्रक्रिया अस्मिताओं के आधार पर बँटे, यह अनुचित है। यह जानते हुए भी, स्कूलों में अकसर इस तरह के उदाहरण दिखते हैं। समावेशन का यह बड़ा मुद्दा है। इसका असर बच्चों के सीखने पर भी ख़ूब दिखता है। इन मुद्दों को पहचानना, दूर करने के प्रयास करना, समावेशन की तरफ़ बढ़ा हुआ पहला क़दम है।

खेल, आमतौर पर लड़कों का विषय माना जाता रहा है। लड़कियाँ, लड़कों के साथ नहीं खेलतीं, और न ही उन्हें खेलने दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार, खाना बनाना, खाना परोसना, बर्तन साफ़ करना, आदि लड़कियों के काम माने जाते रहे हैं। यदि लड़के ऐसे काम करते भी हैं तो उनका मज़ाक़ उड़ाया जाता है। और फिर यदि ऐसे काम लड़कों के एक ऐसे समूह को करने हों जिसमें आदिवासी, दलित और सामान्य वर्ग के बच्चे हों तो मसला और पेचीदा हो जाता है। एक तो लड़के खाना बनाने का काम नहीं करते; दूसरा, यदि वे इसके लिए तैयार हो भी जाते हैं तब लड़कों के समूह में भी यह सवाल उठ आता है कि दलित या आदिवासी लड़के के साथ सामान्य लड़के खाना बनाने से ही मना कर देते हैं। एक बेहतर लोकतांत्रिक समाज के निर्माण के लिए स्कूलों की ये ज़िम्मेदारी है कि संवैधानिक मूल्यों और मान्यताओं का पालन करते हुए इन मसलों पर काम हो। इन्हीं मूल्यों और मान्यताओं में से एक मुद्दा समावेशन का है।

ग्रामीण शिक्षा केन्द्र (जीएसके) राजस्थान के सवाई माधोपुर और टोंक ज़िले में समुदाय के साथ मिलकर शिक्षा के पारिस्थितिकी तंत्र को और अधिक अनुकूल बनाने के लिए काम कर रहा है। केन्द्र का एक मुख्य कार्यक्रम 'उदय', उन सामुदायिक पाठशालाओं के इर्दगिर्द केन्द्रित है जिन्हें समुदाय और दूसरे विद्यालयों को यह दिखाने के लिए स्थापित किया गया था कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा क्या है।

ग्रामीण शिक्षा केन्द्र द्वारा संचालित दो पाठशालाओं में समावेशन को लेकर काम किया जा रहा है। पाठशालाओं में समावेशन के इस काम में व्यवस्था विषयक सुधारों के साथ-साथ, बच्चों से बातचीत करने, सभी समुदायों के बच्चों व शिक्षकों की स्कूल असेंबली में बराबर भागीदारी सुनिश्चित करने, कक्षा की बैठक व्यवस्था, वहाँ की दैनिक गतिविधियों, आदि पर लगातार काम किया जाता है। इन सभी प्रयासों का परिणाम धीरे-धीरे दिखाई देता है। हमारा अवलोकन यह भी रहा है कि साथ-साथ खेलना, मिलकर खाना बनाना और खाना जैसी कुछ सामूहिक गतिविधियाँ समावेशन की गति को तेज़ कर देती हैं।

> **भोजन परोसने, खाने-खिलाने और बर्तन साफ़ करने के काम में जाति और वर्ग के बीच की दूरियाँ कब ख़त्म हो गईं, बच्चों को पता ही नहीं चला।**

चित्र 1 : स्कूल में रोटी बनाने की गतिविधि में शामिल लड़के

चित्र 2 : मिलकर खाना बनाने की गतिविधि में शामिल लड़कियाँ

चित्र 3 : खेल के दौरान ऊपर गई गेंद को देखते विद्यार्थी

साथ-साथ खेलने की शुरुआत

साथ खेलने की शुरुआत कैरम बोर्ड, लूडो जैसे इंडोर खेलों से की गई। जब लड़के और लड़कियों को खेलने की सामग्री दी गई तो हमने देखा कि लड़कियों ने लड़कियों को ही अपना साथी बनाया और लड़कों ने लड़कों को। अगले दिन, लड़के-लड़कियों को ज़बरन एक साथ बैठा देने की बजाय मैंने पहले ही उनके उपसमूह बना दिए। इन उपसमूहों में लड़के और लड़कियाँ, दोनों ही शामिल थे, लेकिन यहाँ एक नई समस्या आ खड़ी हुई। आदिवासी और दलित बच्चों को किसी ने भी साथ नहीं बिठाया, फिर चाहे वे लड़के हों या लड़कियाँ। जब कारण पूछा गया तो उन्होंने बताया कि हम दलितों और नायकों के साथ नहीं खेलेंगे, चाहे वे लड़के हों या लड़कियाँ।

ऐसा ही लंच करते और नल से पानी पीते समय देखा गया। चूँकि नल एक ही था, इसलिए सामान्य वर्ग से आने वाले बच्चे पानी पीने से पहले नल को कई बार धोते। लड़कियों में तो ये भावना कुछ ज़्यादा ही थी। और हो भी क्यों नहीं, शुद्धता और अस्मिता का पाठ उन्हें अधिक जो सिखाया जाता है। हर किसी में जाति और लिंग के अनुसार श्रेष्ठता का भाव था। पिछड़े और दलित वर्ग के बच्चे किसी अज्ञात भय या अनुभवों के चलते सबसे दूरी बनाकर रखते। मेरे कहने पर भी वे साथ नहीं आते, और मुझसे भी दूरी बनाकर रखते। मुझे लगा कि समावेशन की शुरुआत मुझे ख़ुद से करनी होगी और यह भी कि, साथी शिक्षकों को भी इससे जोड़ने की ज़रूरत है। मैंने यह भी सोचा कि असेंबली को भी फ़र्क़ तरह से करने की ज़रूरत है। मेरी इस बात को साथी शिक्षकों ने ठीक से समझा।

असेंबली में परिवर्तन

असेंबली में परिवर्तन करते हुए, मैंने बच्चों को क़तार की बजाए गोल घेरे में बैठाना शुरू किया। अब कोई किसी के आगे-पीछे न होकर बराबरी से बैठता। मैं भी बच्चों के बीच ही बैठता। बच्चे मुझे अपने पास बैठने के लिए बुलाते। नहीं जाने पर, वे मेरे पास आकर बैठने के लिए झगड़ते। इसलिए मैं रोज़ जगह बदलता, और सभी वर्ग के लड़के-लड़कियों के साथ बारी-बारी बैठता, उनसे बात करता, और उनके साथ गाता। इससे मुझे उनके बीच चल रही बातचीत में शामिल होने का अवसर मिलता।

सामाजिक मौक़ों पर भागीदारी

एक दिन मुझे पता चला कि मेरे एक दलित विद्यार्थी के घर में विवाह कार्यक्रम है। मैंने वहाँ जाने का निर्णय लिया, हालाँकि उसके माता-पिता ने मुझे निमंत्रण ही नहीं दिया था। पर मैं इस अवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। इसलिए मैंने बच्चे से कहा, "आपके घर में शादी है, और मुझे बुलाया भी नहीं!"

बच्चे ने मेरी तरफ़ देखा, और बिना कुछ कहे घर चला गया। थोड़ी देर में उसके पापा आए। उन्होंने बड़े ही विनम्र भाव से माफ़ी माँगते हुए कहा, "गुरुजी, आप तो जानते हैं हम कौन हैं! बस इसी डर से आपको निमंत्रण देने की हिम्मत नहीं हुई।"

मैंने फ़ौरन बात को सँभालते हुए कहा, "अब लेने आए हो या मना करने?" वह फिर सकपकाए, पर ख़ुद को सँभालते हुए उन्होंने कहा, "चलिए गुरुजी!" मैं जाने लगा, पर मेरे साथी शिक्षक हिले तक नहीं। हालाँकि प्रशिक्षणों और भाषणों में सभी

एक राय से समावेशन का समर्थन करते हैं, पर यहाँ व्यवहारिक मामले ने उन्हें रोक दिया। शिक्षा की नज़र से उनका साथ आना ज़रूरी था। मेरे ज़ोर देने पर ही वे साथ चले। घर स्कूल के सामने ही था तो पहुँचने में वक़्त नहीं लगा। सबने हमें पहचान लिया और नमस्ते करने लगे। हमारे बैठने-खाने के लिए अलग दरी और बर्तनों की व्यवस्था होने लगी। लेकिन मैंने साफ़ कह दिया कि खाना खाएँगे तो सबके साथ और सबकी तरह, वरना नहीं खाएँगे। उन्हें मेरी बात माननी पड़ी, और हमने सबके साथ बैठकर भोजन-पानी किया।

इस घटना का काफ़ी असर हुआ। अगले दिन से दलित बच्चे ख़ुद को और अधिक सहज महसूस करने लगे। यह देखकर अन्य वर्गों के कुछ बच्चों को काफ़ी अजीब लगा। हमने भी एक सत्र चर्चा के लिए रखा, और इस मुद्दे पर बातचीत की। बच्चों पर जाति, वर्ण व्यवस्था का रंग अभी इतना गहरा नहीं चढ़ा था कि वे विवेक और तर्क को अनदेखा कर देते। साथ बैठने, पढ़ने और बात करने तक बात बन रही थी। इसके लिए नियमित चर्चाएँ होतीं। इनमें शाकाहारी और माँसाहारी भोजन के उपयोग व उससे जुड़ी मान्यताएँ चर्चा का विषय बनतीं। कभी-कभी तो कर्म, जाति, व्यवसाय, भोजन और सफ़ाई जैसे तर्क आपस में गड्ड मड्ड हो जाते, और फिर हमें हर मुद्दे पर अलग चर्चा आयोजित करनी होती। हालाँकि छूना, धक्का-मुक्की करना, साथ बैठकर भोजन करना अभी भी नहीं हो रहा था। इसके लिए कुछ और खेलों के बारे में हमने सोचा।

नमस्ते-नमस्ते का खेल

इस खेल में सारे बच्चे एक गोल घेरे में बैठ जाते हैं। एक बच्चा घेरे के बाहर रहता है, और किसी दूसरे बच्चे की पीठ को छूकर भागता है। जिस बच्चे की पीठ को छुआ जाता है वह बच्चा विपरीत दिशा में भागते हुए उसे सामने से मिलता है। यहाँ वे दोनों हाथ मिलाकर नमस्ते करते हैं, और ख़ाली हुए स्थान पर बैठने के लिए भागते हैं। जो बच्चा देर से पहुँचता है ज़ाहिर ही है कि वह बैठ नहीं पाता और तब उसे यही प्रक्रिया दोहरानी होती है। इस खेल के आख़िर में हमने देखा कि सभी लड़के-लड़कियों ने एक दूसरे को छुआ और हाथ मिलाया। पहले पहुँचने की चाह में वे सबकुछ भूल गए। बाद में यदि किसी को याद भी आया तो उसने खेल से मिले आनन्द को ही महत्त्व दिया। हमने, चूहा दौड़ बिल्ली आई, कोड़ा है जमालशाही, और खो-खो जैसे और भी कई खेल खेले। खेल खेलते-खेलते बच्चों में सफल होने, जीतने और ख़ुद को बेहतर साबित करने की चाह मज़बूत होने लगी। वे सबकुछ भूलकर अपने कौशलों पर काम करने लगे। बेहतर प्रदर्शन के लिए वे अच्छी टीम बनाने लगे। फिर उसमें दलित, आदिवासी हो या कोई और, उन्हें इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता।

साथ बैठकर खाना

माहौल पहले से कुछ बेहतर हुआ था, पर लंच के समय कुछ ही बच्चे अपने घर से खाना लेकर आते थे। स्कूल के पास वाले कुछ बच्चे खाना खाने घर चले जाते तो कुछ खाना लेकर ही नहीं आते थे। हमने सभी को टिफ़िन लेकर आने के लिए कहा। जो बच्चे खाना नहीं ला पाते थे उनके माता-पिता से बात की, लेकिन बात नहीं बनी। मैं भी अपना लंच बच्चों के साथ करने लगा। हमने खाना शेयर करना शुरू किया। मैंने तय किया कि मैं सबके टिफ़िन से एक निवाला खाऊँगा। मेरा पेट तो इसी से भर जाता, और मैं अपना टिफ़िन उन बच्चों को दे देता जो लंच नहीं ला पाते थे। इसे देख कुछ बच्चे अतिरिक्त रोटियाँ लाने लगे। इस तरह, साथ लंच करने और शेयर करने से अलग-अलग समाजों से आने वाले बच्चों के बीच समायोजन होने लगा।

इसी दौरान, हमने खेलों को नियमित करने के साथ-साथ किचन गार्डन और कुकिंग क्लब चालू किए। बच्चे स्कूल की ख़ाली जगह पर किचन गार्डन बनाने के लिए खाद, बीज, दवाएँ, औज़ार, आदि अपने घरों से लाते और सब मिलकर उसे तैयार करते। गार्डन के फल और सब्ज़ियाँ सबके लिए उपलब्ध थीं। ज़्यादा पैदावार होने पर बच्चे उन्हें घर भी ले जा सकते थे। वहीं से हमने उनकी खान पान की आदतों पर काम करते हुए कुकिंग क्लब का संचालन किया। यही वह समय था जब बच्चों ने लकड़ी-चूल्हा, बर्तन, और सलाद से लेकर खाना पकाने तक का काम सीखते हुए अपने हाथ में लिया।

भोजन परोसने, खाने-खिलाने और बर्तन साफ़ करने के काम में जाति और वर्ग के बीच की दूरियाँ कब ख़त्म हो गईं, बच्चों को पता ही नहीं चला। बच्चों को सहज देखते हुए माता-पिता ने भी उन्हें डाँटना बन्द कर दिया। कभी कभार अभिभावक हमसे शिकायत करते, पर उनकी शिकायत में दृढ़ता न होकर सिर्फ़ रस्म अदायगी होती। हम भी उनसे इतना ही कहते कि ज़माना बदल रहा है। आपने तो अपना जीवन जी लिया, इनको बहुत आगे जाना है।

माता-पिता स्कूल व्यवस्था को तो स्वीकार कर पा रहे थे, लेकिन उनके घरों के नियम वैसे ही बने रहे। वहाँ वे बदलाव के लिए तैयार नहीं थे। ये हमारे दायरे के बाहर होने के कारण हमने स्कूल के माध्यम से नई पीढ़ी के साथ काम करना जारी रखा।

> **मुझे लगा कि समावेशन की शुरुआत मुझे ख़ुद से करनी होगी और यह भी कि, साथी शिक्षकों को भी इससे जोड़ने की ज़रूरत है। मैंने यह भी सोचा कि असेंबली को भी फ़र्क़ तरह से करने की ज़रूरत है।**

कुछ अन्य प्रयास

दिन प्रतिदिन की गतिविधियों में साथ पढ़ना, साथ खाना और खेलना सामान्य बात हो गई थी। बच्चे अब बच्चे नहीं रहे, वे किशोरावस्था की तरफ़ बढ़ रहे थे। वे अपने-अपने आयु वर्ग, जेंडर के आधार पर विभिन्न खेल मंचों एवं प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेने के लिए जाने लगे। हालाँकि हम इन प्रतिस्पर्धाओं में मिली जुली टीम कभी नहीं भेज पाए।

समावेशन के सन्दर्भ में इन स्कूलों में कुछ बेहतर इसलिए भी हो पाया क्योंकि नियमित होने वाले अनुभवों को समायोजित और विश्लेषित करते हुए हम ज़रूरी बदलाव करते रहे। ऐसा ही एक बदलाव तब किया गया जब स्कूल के अच्छे परिणामों के चलते विद्यालय में लड़कों की संख्या बढ़ने लगी। प्रभावशाली लोग अपने बच्चों के दाख़िले के लिए अपने प्रभाव का इस्तेमाल करने लगे। तब हमने स्कूल प्रबन्धन समिति और समुदाय की बैठकें आयोजित कर सबकी सहमति से विद्यालय में 50 प्रतिशत सीटें बालिकाओं के लिए सुरक्षित कर दीं। इतना ही नहीं, हमने 500 मीटर के दायरे में आने वाले सभी बालक-बालिकाओं को दाख़िला देने का निर्णय भी लिया। इससे विद्यालय के पास की बस्ती के मुस्लिम, घुमन्तु और दलित समुदाय के बच्चों का 100 प्रतिशत दाख़िला सुनिश्चित हुआ।

पीयर लर्निंग और मल्टी-ग्रेड मल्टी-लेवल शिक्षण पद्धतियों का उपयोग कर हमने समायोजन हेतु बच्चों को एक दूसरे से मदद लेने, मिलकर सीखने और कार्य करने के अवसरों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। इससे बच्चों की शिक्षकों पर निर्भरता कम हो

चित्र 4 : सब भेदभाव भूलकर खेल में मशग़ूल बच्चे

गई। वे एक दूसरे का सहयोग लेते हुए बेहतर समझ और जुड़ाव स्थापित कर पा रहे थे। आपसी विवादों को भी सामूहिक विचार विमर्श कर सुलझाने के लिए छात्र पंचायत का गठन किया गया। इससे बच्चों को लोकतांत्रिक तरीक़े से अपनी व्यवस्था बनाने और चलाने के व्यवहारिक अनुभव मिलने लगे।

विष्णु गोपाल ग्रामीण शिक्षा केन्द्र के निदेशक हैं। आपके पास स्कूल प्रबन्धन और स्कूलों में शैक्षिक कार्यक्रमों को चलाने का बृहत् अनुभव है। आपकी खेलों में ख़ासी रुचि है जो आपके काम से बख़ूबी जुड़ती है।

सम्पर्क : vishnu.gopal@graminshiksha.org.in